IJCRT.ORG ISSN : 2320-2882

INTERNATIONAL JOURNAL OF CREATIVE RESEARCH THOUGHTS (IJCRT)

An International Open Access, Peer-reviewed, Refereed Journal

समाज सुधार से राष्टवाद तक महिला चेतना के विकास का ऐतिहासिक विश्लेषण।

1. मनीषा कुमारी
शोधार्थी, स्नातकोत्तर इतिहास विभाग, भू.ना.मंडल विश्वविद्यालय, मधेपुरा (बिहार)
2. डॉ0 इम्तियाज़ अंजुम
विभागाध्यक्ष, स्नातकोत्तर इतिहास विभाग, भू.ना.मंडल विश्वविद्यालय, मधेपुरा (बिहार)

शोध सारांश

19 वीं सदी के सामाजिक सुधार आंदोलनों ने भारतीय समाज में महिला को सार्वजनिक विमर्श का केंद्रीय विषय बनाया। भारतीय समाज में महिला चेतना का विकास एक क्रांतिकारी प्रक्रिया रही है जो 19 वीं सदी के समाज सुधार आंदोलनों से शुरु हो कर 20 वीं सदी के राष्ट्रवादी संघर्ष तक फैली। इसने महिलाओं की समाजिक स्थिति में सुधार के साथ–साथ राजनैतिक जागरुक्ता और राष्ट्रीय पहचान की दिशा की ओर भी प्रेरित किया। वैसे तो प्रारंभिक सुधार का प्रयास मुख्यतः पुरुषों के नेतृत्व में संचालित हुआ लकिन इसी ने आगे चलकर एक ऐसी वैचारिक, शैक्षणिक और वैधानिक पृष्ठभूमि तैयार किया जिसने महिलाओं में चेतना की अनुभूति और राजनैतिक अभिव्यक्ति का आधार प्रदान किया। इस शोध आलेख के द्वारा समाज सुधार से राष्ट्रवाद तक महिला चेतना के क्रमिक विकास का विश्लेषण व्यापक भारतीय परिप्रेक्ष्य में किया जाना है, और तर्क यह है कि समाज सुधार आंदोलनों ने महिलाओं का जो बौद्धिक विकास किया वह राष्ट्रीय आंदोलन के समय संगठित हो कर राजनैतिक सक्रियता में बदल गया।

कूट शब्द : समाज सुधार, राष्ट्रवाद, पाश्चात्य शिक्षा, महिला चेतना, स्वदेशी आंदोलन

परिचय

औपनिवेशिक काल में भारतीय महिलाओं की स्थिति असमानता और विविधताओं से भरी थी। महिला का शिक्षा से अलग रहना, सती प्रथा, वैधव्य जीवन का कष्ट, पर्दा प्रथा जैसी समस्याएं सामाजिक संरचना में गहराई के साथ विद्यमान थी। 18वीं सदी के उत्तरार्द्ध से जब औपनिवेशिक शासन ने भारत में प्रशासनिक और वैधानिक व्यवस्था को पुनर्गठित करना शुरु किया तब समाज में मौजूद कुरीतियां भी आलोचना और पुनर्विचार के दायरे में आई।[1]

सामाजिक सुधार आंदोलनों का उद्देश्य समाज में मौजूद केवल कुरीतियों को ही दूर नहीं करना था बल्कि एक आधुनिक और नैतिक समाज की स्थापना भी करना था। महिलाएं पहली बार सार्वजनिक विमर्श की विषय बनी और उनके सामाजिक और राजनैतिक उत्थान के लिए प्रयास किए गए। हालांकि प्रारंभिक सुधार के प्रयासों में महिलाओं को प्रायः संरक्षण और उद्धार की दृष्टि से देखा गया, लेकिन इसी प्रक्रिया ने महिला चेतना के विकास की पृष्ठभूमि भी तैयार की।[2] भारतीय मध्यकालीन समाज का रुपांतरण एक विदेशी ब्रिटिश के द्वारा हो रहा था और यह बदलाव उसी के हित के अनुकूल था। इसलिए यह रुपांतरण अधूरा रहा, जिस कारण भारत एक राष्ट्र के रुप में ब्रिटेन या फ्रांस के जैसा समन्वित नहीं हो सका। ब्रिटिश काल में भारतीय समाज के अंतर्गत जिन

1. फोर्ब्स गेराल्डन : वुमन इन मॉडर्न इंडिया, कैम्ब्रिज यूनिवर्सिटी प्रेस, 1996
2. सरकार, सुमित : आधुनिक भारत (1885–1947), दिल्ली, 1983

प्रगतिशील तत्वों का उदय हुआ, उनके स्वच्छंद सामाजिक–आर्थिक, राजनीतिक और सांस्कृतिक प्रगति पर ब्रिटिश सरकार ने पुरानी प्रतिक्रियावादी संस्थाओं के माध्यम से जो प्रतिबंध लगाया, उस प्रतिबंध के खिलाफ प्रगतिशील तत्वों का संघर्ष हुआ। इस संघर्ष के परिणामस्वरुप भारतीय राष्ट्रवाद का उदय हुआ। 20वीं सदी में राष्ट्रीय आंदोलन के विस्तार के साथ महिलाओं की भूमिका में भी बदलाव आया। वे अब संरक्षण और उद्धार को विषय वस्तु नहीं रहीं बल्कि राष्ट्र निर्माण में निर्णायक सहभागी बन कर उभरी। यह परिवर्तन आकस्मिक नहीं था। समाज सुधार आंदोलनों ने जो वैचारिक और शैक्षणिक आधार तैयार किया था, यह उसी का परिणाम था।

समाज सुधार आंदोलन और महिलाओं का योगदान

भारत में ब्रह्म समाज, आर्य समाज, प्रार्थना समाज आदि सुधार आंदोलनों के द्वारा 19वीं सदी में समाजिक कुरीतियों जैसे सती प्रथा, बाल विवाह, विधवा विवाह पर रोक, बहुविवाह, महिला शिक्षा का अभाव और महिलाओं की दयनीय स्थिति को दूर करने का प्रयास हुआ। इन आंदोलनों में महिलाओं का योगदान शुरु में सीमित था लेकिन धीरे–धीरे महिलाएं शिक्षित एवं जागरुक हुई और संगठनकर्त्ता के रुप में उभरीं। राजा राममोहन राय ने सती प्रथा के खिलाफ अभियान चलाया और 1829 में सती प्रथा निषेध अधिनियम पारित हुआ। ईश्वर चन्द विद्यासागर ने विधवा पुनर्विवाह को 1856 में कानूनी मान्यता दिलाई। स्वामी दयानन्द सरस्वती ने बाल विवाह और बहु विवाह का विरोध किया तथा महिला शिक्षा पर जोर दिया। इन सब प्रयासों ने यह संकेत दे दिया कि महिला समस्या अब सामाजिक आलोचना का विषय बन चुका था।[3]

पुरुष समाज सुधारकों के प्रयासों से जो बौद्धिक–वैचारिक मार्ग प्रशस्त हुआ, उसी मार्ग पर चलकर महिलाएं बदलाव के लिए स्वयं आगे आईं और शिक्षा, संगठन निर्माण तथा समाजिक जागरण में महत्वपूर्ण योगदान दिया। सावित्री बाई फूले ने अपने पति ज्योति राव फूले के साथ मिल कर दलित और महिला शिक्षा के क्षेत्र में क्रांतिकारी कार्य किया तथा बाल विवाह, सती प्रथा, विधवाओं की दयनीय स्थिति जैसी समस्या के खिलाफ आवाज उठाई। पंडित रामाबाई ने विधवाओं के उत्थान के लिए शारदा सदन (1889) और मुक्ति सदन की स्थापना की। उन्होंने महिलाओं की शिक्षा और स्वावलंबन पर जोर दिया। ताराबाई शिंदे ने 'स्त्री–पुरुष तुलना' (1882) जैसी पुस्तक लिखकर पितृसत्ता पर प्रहार किया जो महिलाओं के अधिकारों की प्रारंभिक आवाज बनी।[4] रामाबाई राणाडे ने प्रार्थना समाज के साथ जुड़कर महिला शिक्षा और विधवा उत्थान में योगदान दिया। सरला देवी चौधरानी ने 1910 में भारत स्त्री महामंडल की स्थापना की जो सभी वर्गों की महिलाओं को एकजुट करने वाला पहला संगठन था। एनी बेसेंट ने होमरुल आंदोलन के माध्यम से महिलाओं को प्रेरित किया।

यहां यह भी ध्यान रखने की आवश्यक है कि सुधार प्रयासों का नेतृत्व प्रायः शिक्षित पुरुषों के हाथ में था। महिलाओं की भागीदारी सीमित ही रही। अतः देखा जाए तो महिलाएं विमर्श की ही विषय वस्तु बनी रही। लेकिन वैधानिक सुधारों और शिक्षा के प्रसार ने महिलाओं के लिए सार्वजनिक क्षेत्र मं प्रवेश का मार्ग प्रशस्त किया।[5]

पाश्चात्य शिक्षा और भारतीय महिलाएं

पाश्चात्य शिक्षा का प्रसार सबसे अधिक ब्रिटिश सरकार ने किया। भारत में अंग्रेजों की राजनीतिक, प्रशासनिक और आर्थिक आवश्यकताओं के कारण भारत में आधुनिक शिक्षा की शुरुआत हुई। 19वीं सदी के पूर्वार्द्ध तक भारत का बहुत बड़ा हिस्सा ब्रिटिश शासन के अधीन हो चुका था। विजित भूभाग के लिए व्यापक प्रशासनिक तंत्र की व्यवस्था चाहिए थी और इसके लिए बड़े पैमाने पर शिक्षित लोगों की आवश्यकता थी। भारत–ब्रिटेन के बीच व्यापार और औद्योगिक उत्पाद को बढ़ाने के लिए भी शिक्षित एजेंटों, क्लर्कों और मैनेजरों का होना जरुरी हो गया था। इन्हीं कारणों से भारत में स्कूल और कॉलेज खोले गए।

भारतीय समाज में महिलाओं की शिक्षा काफी सीमित थी, जो मुख्य रुप से घरेलू या फिर धार्मिक थी। अंग्रेजी शासन के द्वारा 19वीं शताब्दी में जिस पाश्चात्य शिक्षा प्रणाली की शुरुआत की

3. मनी, लता : कॉन्टेंसियस ट्रेडिसंस, यूनिवर्सिटी ऑफ कैलिफोर्निया प्रेस, 1998
4. सरकार, सुमित एवं तनिका : आधुनिक भारत
5. कुमार, राधा : दि हिस्ट्री ऑफ डूइंग, नई दिल्ली, 1993

गई, उससे मुख्य रुप से पुरुष ही जुड़े रहे। लेकिन धीरे–धीरे यह शिक्षा मिशनरियों एवं समाज सुधारकों की मदद से महिलाओं तक भी पहुंची। प्रायः सबने यह स्वीकार किया कि महिला को शिक्षा और संस्कृति का समान अधिकार मिलना चाहिए। महिलाओं में शिक्षा का प्रसार तेजी से हुआ। महिला शिक्षा के प्रति जो रुढिगत विरोध था, वह खत्म होने लगा। एक समय था जब भारत में महिला शिक्षा के समर्थक तो नहीं थे, बल्कि उसके विरोधी और शत्रु थे। "अब महिला जाति कई मंजिलों से गुजर चुकी हैं– पूरी उदासीनता, उपहास, आलोचना और स्वीकृति के साथ। अब यह आसानी से कहा जा सकता है कि भारत में सभी महिलाओं की शिक्षा को भी उतना ही आवश्यक समझा जा रहा है जितना लड़कों की शिक्षा को, इसे राष्ट्रीय प्रगति के लिए आवश्यक शर्त माना जा रहा है।"[6]

ब्रह्म समाज, आर्य समाज, रामकृष्ण मिशन आदि सुधार संगठनों के साथ–साथ मिशनरी संस्थाओं और पारसी संप्रदाय ने महिला शिक्षा के दिशा में मार्ग दर्शन का काम किया। भारतीय समाज में रुढिवादी परंपराएं, बाल विवाह, पर्दा प्रथा, देवदासो प्रथा, वैधव्य जीवन का कष्ट और समाजिक असमानता महिला शिक्षा के मार्ग में प्रमुख बाधाएं थी। कई भारतीय समाज सुधारकों क द्वारा इन बाधाओं को चुनौती देते हुए महिला शिक्षा के प्रति ठोस कदम उठाए गए। राजा राम माहन राय ने महिला शिक्षा और उनके अधिकारों की बात की और साथ ही बाल विवाह तथा सती प्रथा जैसी कुरीति के खिलाफ पुरजोर आवाज भी उठाया। ईश्वर चंद विद्यासागर महिला शिक्षा के प्रमुख अग्रदूत थे। 1850 के दशक में बंगाल में 35 से अधिक बालिका विद्यालय स्थापित किए। जे.ई.डी. बैथुन एक शिक्षाविद् थे जिन्होंने कलकत्ता में महिलाओं के लिए स्कूल की स्थापना की। विद्यासागर ने उनके प्रयास को समर्थन दिया और बंगाल में बैथुन स्कूलों की शृंख्ला सी खुल गई। केशवचंद सेन, ज्योतिबा फूले, राणाडे, वीर सालिंगम पुंतुल, पंडिता रामाबाई आदि ने महिला शिक्षा के क्षेत्र में महत्वपूर्ण कार्य किए। ज्योतिबा फूले और उनकी पत्नी सावित्री बाई फूले ने महाराष्ट्र में दलित आर पिछड़े समाज की महिलाओं के लिए शिक्षा पर विशेष ध्यान दिया। पूणा में लड़कियों के लिए पहला स्कूल खोला गया (1848)। पंडिता रामाबाई ने पूणा में शारदा सदन की स्थापना की, जो महिलाओं के लिए एक शैक्षणिक और पुनर्वास केंद्र था। प्रो. कर्वे द्वारा 1916 में स्थापित इंडियन वीमंस यूनिवर्सिटी ने महिला शिक्षा के क्षेत्र में बड़ा काम किया। इस प्रकार 19वीं सदी के सुधार आंदोलनों में शिक्षा को केवल साक्षरता के रुप में ही नहीं बल्कि नैतिक और बौद्धिक जागरण के साधन के रुप में भी देखा गया।

पत्रकारिता और महिला चेतना

19वीं सदी के मध्य तक पत्रकारिता में महिलाओं की मौजूदगी लगभग नहीं थी, क्योंकि समाज में महिलाओं की शिक्षा और सार्वजनिक भूमिका सीमित थी। 1880 के दशक में महिलाएं संपादक और लेखिका के रुप में उभरीं। इनकी पत्रिकाएं अक्सर महिला शिक्षा और सुधार पर केंद्रित होती थी। हेमंत कुमारी देवी चौधरानी हिन्दी पत्रकारिता की पहली महिला संपादक मानी जाती हैं। 1888 में 'सुगृहणी' नामक पत्रिका उनकी हिंदी में महिलाओं द्वारा संपादित पहली पत्रिका थी।[7] मोहम्मदी बेगम पहली मुस्लिम महिला पत्रकार थीं जिन्होंने 1898 में 'तहजीब–ए–निस्वां' नामक उर्दू साप्ताहिक शुरु किया।[8] 1909 में रामेश्वरी देवी नेहरु और कमला देवी नेहरु ने इलाहाबाद से 'स्त्री दर्पण' नामक पत्रिका की शुरुआत की जो उत्तर भारत में महिलाओं को जागृत करने वाली प्रमुख पत्रिका बनी। 20वीं सदी के शुरुआत में ही 'दि इंडियन लेडिज मैगजीन' जैसी पत्रिका महिलाओं द्वारा संपादित हुई जो शिक्षा और राष्ट्रवाद को बढावा देती थी।[9]

कुल मिलाकर महिलाओं की भागीदारी पत्रकारिता के क्षेत्र में सीमित ही रही, लेकिन जो भी रही क्रांतिकारी ही थी। शिक्षा के प्रसार के साथ–साथ महिलाओं ने लेखन और पत्रकारिता के माध्यम से अपनी अभिव्यक्ति देनी शुरु की। महिला पत्रिकाएं और साहित्यिक मंच के माध्यम से महिला अनुभव को सार्वजनिक बहस का विषय बनाया जाने लगा। 'वामाबोधिनी पत्रिका' और अन्य महिला उन्मुख प्रकाशनों ने घरेलू समस्या, शिक्षा और अधिकारों पर विमर्श करने को प्रोत्साहित किया।[10]

राष्ट्रवाद और महिलाओं की सार्वजनिक भागीदारी

भारतीय राष्ट्रवाद का उदय राजनैतिक पराधीनता के दिनों में हुआ। ब्रिटेन ने अपने स्वयं के हित में भारतीय समाज के आर्थिक ढांचे को बदल दिया; केंद्रीकृत राज्य व्यवस्था की स्थापना की; आवागमन

6. ऑल इंडिया वीमंस एजुकेशनल कांफ्रेंस,1927 में सांगली की रानी, (ओमेली : मॉडर्न इंडिया ऐंड दि वेस्ट, में उद्धृत)
7. देवी, हेमंत कुमारी : फेमिनिज्म इन इंडिया, 2022
8. लिटरेरी नोट्स : मोहम्मदी बेगम एंड तहजीब–ए–निस्वां, डॉन, 2015
9. दि इंडियन लेडिज मैगजीन (1901–1938), लीहाई विश्वविद्यालय प्रेस
10. संगारी, कुमकुम एवं सुदेश वैद, रिकास्टिंग वुमन, नई दिल्ली, 1989

के नए साधन और अन्य संस्थागत संरचनाओं का निर्माण किया; आधुनिक शिक्षा पद्धति की शुरुआत की। इसके फलस्वरुप नए सामाजिक वर्गों का जन्म हुआ। इस नए वर्ग का अपनी हितों की रक्षा के लिए सम्राजयवादी शक्ति से जो टकराव हुआ, उससे भारतीय राष्ट्रवाद का जन्म और विकास हुआ। ई. एच. कार ने लिखा है– "सही अर्थों में राष्ट्रों का उदय मध्य युग की समाप्ति पर ही हुआ।"[11] ब्रिटिश साम्राज्यवाद की आर्थिक आवश्यकता ने और उसके इस विश्वास ने कि ब्रिटिश संस्कृति पूरी दुनिया में सर्वोच्च है और इसके प्रसार के जरिए पूरी दुनिया को एकीकृत और सभ्य बनाया जा सकेगा, भारत में पाश्चात्य शिक्षा की शुरुआत के पीछे यह तथ्य काम कर रहा था। शिक्षित भारतीयों ने अंग्रेजी लोकतांत्रिक साहित्य का अध्ययन किया और लोकतांत्रिक सिद्धांत को आत्मसात किया। इससे भारतीय राष्ट्रवादी आंदोलन को जनतांत्रिक आधार मिला। आंदोलन के माध्यम से निर्वाचन, मताधिकार का विस्तार, समाचार–पत्र और संगठनों की स्वतंत्रता, प्रतिनिधि सरकार, जनता के प्रति उत्तरदायी मंत्रिमंडल आदि की मांग की जाने लगी।

ब्रिटिश शासन काल में महिलाओं की स्थिति बदली। बीसवीं सदी के प्रारंभ में स्वदेशी आंदोलन (1905) ने पहली बार महिलाओं को बड़े पैमाने पर सार्वजनिक गतिविधियों से जोड़ा। विदेशी वस्तुओं का बहिष्कार, स्वदेशी वस्तुओं का प्रचार और सभाओं में महिलाओं की भागीदारी ने महिला चेतना को घरेलू दायरे से बाहर निकाल कर सार्वजनिक सहभागिता में बदल दिया।[12] महिलाओं का 1919 के बाद राजनीति में तेजी से प्रवेश एक महत्वपूर्ण सामाजिक बदलाव साबित हुआ। महात्मा गांधी और कांग्रेस के द्वारा राष्ट्र हित में महिलाओं का आह्वान किया जा रहा था। गांधी जी ने महिलाओं को अहिंसक संघर्ष के लिए सबसे उपयुक्त माना। उनके अनुसार स्वदेशी और चरखा केवल आर्थिक हथियार नहीं थे बल्कि महिलाओं के लिए राजनैतिक भागीदारी दिखाने का आसान मार्ग भी था। असहयोग आंदोलन (1920) और सविनय अवज्ञा आंदोलन (1930) ने महिलाओं की सार्वजनिक भागीदारी को व्यापक बना दिया। इसमें गांधी जी ने महिलाओं को सत्याग्रह, चरखा और अहिंसक प्रतिरोध के माध्यम से साष्ट्र निर्माण की प्रक्रिया से जोड़ दिया। विदेशी कपड़े की होली जलाना और शराब की दुकानों के सामने धरना देना महिलाओं को प्रुख गतिविधियां बन गई। यह वह दौर था जब पहली बार मध्यम वर्ग की महिलाएं बड़ी संख्या में सड़कों पर उतरी।[13]

प्रीतिलता वाडेदार और बीना दास जैसी महिलाएं प्रत्यक्ष रुप से सशस्त्र संघर्ष में भाग लेकर क्रांतिकारी राष्ट्रवाद को एक नई दिशा प्रदान कर गईं। इन महिलाओं ने कमजोर महिला की रुढिवादी छवि को तोड़ने में अपनी पहचान बनाई। सुभाषचंद्र बोस ने आजाद हिंद फौज (INA) के तहत 'झांसी की रानी रेजीमेंट' का गठन महिलाओं की सैन्य और संगठनात्मक क्षमता का उपयोग करने के लिए किया।

इस प्रकार राष्ट्रवाद ने न केवल स्वतंत्रता की मांग रखी बल्कि महिलाओं के सामाजिक अधिकारों की नींव भी रखी। सरोजिनी नायडु, कमलादेवी चटोपाध्याय, अरुणा आसफ अली और अन्य नेताओं के नेतृत्व ने यह सुनिश्चित किया कि महिलाओं की भागीदारी केवल भीड़ बढाने के लिए नहीं है बल्कि वे नीति निर्माण और मताधिकार जैसे मुद्दों पर बहस कर सकती हैं।[14]

महिलाओं का वैचारिक रुपांतरण

19वीं सदी के मध्य से 20वीं सदी के पूर्वार्द्ध तक भारतीय महिलाओं का वैचारिक सफर समाज सुधार के चौखट से शुरु होकर राष्ट्रवाद की ऊंचाई तक पहुंचा। यह बदलाव व्यक्तिगत मात्र नहीं था बल्कि सामूहिक चेतना का परिणाम था। प्रारंभ में महिलाएं उद्धार और सुधार की विषय वस्तु बनी रहीं, एक सक्रिय कर्त्ता नहीं। सती प्रथा, विद्यवा विवाह जैसे मुद्दे पुरुषों ने ही उठाए। धीरे–धीरे महिलाओं ने स्वयं अपनी नियति को परिभाषित करना शुरु किया और पितृसत्तात्मक ढांच को चुनौती दी। तारा शिंदे की रचना 'स्त्री–पुरुष तुलना' ने पहली बार यह वैचारिक आधार तैयार किया कि महिलाओं की मुक्ति केवल बाहरी सुधारों से नहीं बल्कि आंतरिक चेतना से संभव है।[15]

पाश्चात्य शिक्षा ने महिलाओं को सार्वजनिक जीवन की ओर उन्मुख किया। 1917 में स्थापित भारतीय महिला संघ (WIA) और 1927 में अखिल भारतीय महिला सम्मेलन (AIWC) गठन ने महिलाओं के मुद्दों को राष्ट्रीय मंच प्रदान किया। यहां से महिलाओं का ध्यान केवल घरेलू सुधारों से हटकर नागरिक अधिकारों और मताधिकार की ओर मुड़ने लगा। राष्ट्रवादी आंदोलन के दौरान यह परिवर्तन और भी स्पष्ठ हुआ जब महिलाएं केवल परिवार या समुदाय की प्रतिनिधि नहीं रहीं बल्कि राष्ट्र

11. कार, ई. एच. : व्हाट इज हिस्ट्री, 1961
12. चंद्र, विपिन एवं अन्य : भारत का स्वतंत्रता संघर्ष, नई दिल्ली, 1988
13. सरकार, सुमित : आधुनिक भारत (1885–1947), दिल्ली, 1983
14. फोर्ब्स गेराल्डन : वुमन इन मॉडर्न इंडिया, कैम्ब्रिज यूनिवर्सिटी प्रेस, 1996
15. शिंदे, ताराबाई : स्त्री–पुरुष तुलना, 1882

नागरिक के रुप में उभरी। यह रुपांतरण सामाजिक संरचना में गहरे बदलाव का संकेत था।[16] हालांकि राष्ट्रवाद ने महिलाओं की भूमिका को पूणतः समानता के साथ परिभाषित नहीं किया। वे अब भी घरेलू जीवन और त्याग की परंपरागत व्यवस्था में घिरी रहीं या फिर इसकी अपेक्षा बनी रही। बावजूद इसके राजनीतिक सहभागिता ने महिला चेतना को नई दिशा प्रदान किया।

इस प्रकार देखा जाए तो समाज सुधार और राष्ट्रवाद के बीच का संबंध निरंतरता और रुपांतरण का था जिसने बौद्धिक और नैतिक आधार तैयार किया जिसपर आगे चलकर महिलाएं राजनैतिक रुप से सक्रिय कर्ता के रुप में उभरीं।

समकालीन प्रासंगिकता

समाज सुधार से राष्ट्रवाद तक महिला चेतना के विकास का भारतीय आधुनिक इतिहास में विशेष महत्व है। यह दिखाता है कि समाज में परिवर्तन केवल वैधानिक सुधारों से नहीं लाया जा सकता बल्कि शिक्षा, संगठन और राजनैतिक जागरुक्ता से संभव हो सकता है। इस ऐतिहासिक विकास की प्रक्रिया ने भारत में समानता और महिला अधिकारों की नींव रखी। समाज सुधार के दौर में जिस महिला शिक्षा और समानता की मांग की जा रही थी, वह अब स्वतंत्रता के बाद नीति निर्माण और नेतृत्वकर्ता के रुप में बदल चुका है। आर्थिक आत्मनिर्भरता ने सार्वजनिक जीवन में सहभागिता का अवसर प्रदान किया है। भारतीय महिलाओं का अब वैश्विक मंच पर प्रतिनिधित्व को पूर्ववर्ती समाज सुधार और राष्ट्रवादी आंदोलन के ऐतिहासिक विरासत का परिणाम कहा जा सकता है।

निष्कर्ष

19वीं सदी के समाजिक सुधार आंदोलनों ने भारतीय समाज में महिला से जुड़े मुद्दों को सार्वजनिक विमर्श का विषय बनाया। शिक्षा, कानूनो सुधार और धार्मिक पुनर्व्याख्या के माध्यम से महिला चेतना के लिए बौद्धिक और नैतिक नींव रखी गई। यहीं से आगे चलकर राष्ट्रीय आंदोलन ने महिला चेतना को राजनैतिक अभिव्यक्ति प्रदान किया। इस प्रकार यह कहा जा रकता है कि समाज सुधार और राष्ट्रवाद महिला चेतना के ऐतिहासिक विकास के लिए क्रमिक और मजबूत कड़ी रहे। महिलाओं के लिए 'वस्तु से कर्ता' तक का यह सफर भारतीय इतिहास में एक महत्वपूर्ण अध्ययाय रहा है जिसने वर्तमान में समाजिक सहभागिता के रुप में महिला की भागीदारी को सशक्त रुप में प्रस्तुत किया है।

16. सरकार, तनिका : हिन्दू वाइफ, हिन्दू नेशन